Chap-5

श्री गणेशाय नमः

पंचम अध्याय

भाषागत सौंदर्य

राजस्थानी लोकगीतो का भाषागत सौंदर्य–

किसी देश की स्वाभाविक भाषा उसकी बोलचाल की ही भाषा होती है। अधिकतर शिक्षित व्यक्ति व्याकरण और सुधारवृत्ति के कारण उसकी उपेक्षा करते रहते हैं, जिसके कारण शिक्षित व्यक्तियों की शिष्ट भाषा भी शिथिल पड़ जाती है। लोकभाषा को ग्रामीण कह कर हम उसकी उपेक्षा करते हैं, परंतु उसकी बोलियों में कितने ही ऐसे शब्द हैं जिनकी तुलना में शिष्ट भाषा के शब्द आ ही नहीं सकते। लोकभाषा के शब्दों में भावों को सफलता से व्यक्त करने की क्षमता होती है। किसी भी भाषा का ठेठ रुप उसके ग्रामीण रुप में ही मिलता है। इस दृष्टि से लोकगीतों का अपना निजी महत्व है।

लोककाव्य की आत्मा उसकी सरलता, स्वाभाविकता और सरसता है। लोकगीत इस से ओतप्रोत होते हैं। इन गीतों में रस समय और लय के अनुसार हो आता है।

लोकगीतों में शब्दों की विशाल संपत्ति है। ग्रामीण घरों में नित्य नए शब्दों के प्रयोग सुने जाते है। इसी प्रकार विभिन्न व्यवसाय करने वाली जातियाँ - चमार, लुहार, बढ़ई, धोबी आदि अनेक पारिभाषिक शब्दावली व्यवहार करती है। उसका ऐसा अक्षर स्त्रोत है जिसका प्रवाह कभी सूख नहीं सकता। लोकगीतों में कला प्राकृत और सहज रुप में आई है। गीतों की रचना में गीतकारों को किसी भी नियंत्रण का सामना नहीं करना पड़ा। उन्होंने अपने आत्मसंतोष के लिए ही गीत रचे है उनमें सरसता और भाव प्रणवता अनायास ही आ गई है। ऐसे गीतों के लिए तुलसीदासजी ने सत्य ही कहा है-

मनि मानिक मुक्ता छवि जैसी। अहि गिरिगज सिर सोहन तैसी । नृप किरीट तरुनी तन पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई। तैसेहिं सुकवि कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छवि लहई।

अब हम राजस्थानी लोकगीतों के रचनात्मक स्वरुप को विस्तृत रुप से देखेंगे। राजस्थान का पद्य साहित्य प्रमुखतया दो रुपों में मिलता है। प्रबन्ध और मुक्तक। यहाँ हम मुक्तक की चर्चा करेंगे। राजस्थानी मुक्तक दो रुपो में मिलता है। वर्णन मुक्तक और स्फुट या सामान्य मुक्तक के रुप में। वर्णन मुक्तक के अंतर्गत फाग, बारहमासा, चौमासा, गीत, गजल आदि वर्णनात्मक रचनाएँ होती है। स्फुट रचनाओं में दोहा, सोरठा, कुंडलियाँ आदि के संग्रह मिलते है।

राजस्थान के गीतों को हम प्रधानतःलोकगीत कह सकते हैं। गीत राजस्थानी का प्रमुख छंद भी है। गीत छंद में मिलने वाली ऐतिहासिक रचनाएँ असंख्य कही जा सकती है। एक एक गुट में सैंकड़ो गीत भरे पड़े हैं। इनमें से अनेक गीतों में राजस्थान का इतिहास स्वरित होता है।

सामान्यतया गीत उस पद्यात्मक रचना का परिचय देता है जो गाई जाती हो, किन्तु राजस्थानी गीत दूसरे प्रकार के हैं। इनके लिखने की एक विशेष शैली दिख पड़ती है। एक गीत में तीन या तीन से अधिक दोहले होते हैं और पूरा गीत किसी एक घटना या तथ्य पर प्रकाश डालता है। ये गीत अनेक विषयों पर रचे गए हैं। राजस्थान के लोकगीत जिस प्रकार श्रृंगार और भक्ति के भावों से लहराते मिलते हैं वैसे ही वीर वर्णनों से भी। इनका लक्ष्य मूलतः मानव कीर्ति को अमर बनाना है। यह तथ्य गीतड़ा के भीतड़ा कहावत से भी उद्घाटित होता है। एक प्रकार से राजस्थान के गीत वेदमंत्र थे जिनका प्रभाव नरनारी समाज

पर समान रुप से पडता है।

इन लोकगीतों में (अरे, हाँ, अहा, होजी, हाँजी, रे, ओ, ओजी, अे) आदि उद्‌गारवाचक स्तोभाक्षरों का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त लोकगीतों का सांगीतिक महत्व भी है। पेशेवर गायकों द्वारा गीतों के साथ बजाये जाने वाले विभिन्न वाद्यों से उत्पन्न विभिन्न लय भी इन गीतों के गठन का नियमन करती है। राजस्थानी लोकगीतों में टेर पंक्तियों के आदि, मध्य और अंत त्रिविध प्रयोग मिलते है। ये टेर पंक्तियाँ कहीं पद के प्रारंभ में आती है कहीं मध्य और कहीं पदान्त में। इन गीतों में छन्द विधान की सी व्यवस्था है भले ही शास्त्रीय छन्दोव्यवस्था का प्रयोग नहीं हुआ है। पर इनकी व्यवस्था गीत की धुन व लय पर आधारित है। पूरा गीत प्रथम पंक्ति की धुन और लय में ही आगे चलता है। इस संबंध में लोक साहित्य के अमर साधक श्री कोमल कोठारी के विचार श्री द्रष्टव्य हैं।

लोकगीतों की संरचना में कुछ फार्मूले अथवा कुछ नियम अन्तश्चेतना में चल रहे हैं और उन्हीं नियमों के पुनरावर्तन से गीत के अवयव सर्जित हो रहे हैं।[१]

स्फुट काव्य के अंतर्गत गीत प्रबंधो को छोड़ सब गीत आ जाते है। इसीमें कवि मुक्तक भी निहित है। फाग, बारहमास, चौमासा आदि रचनाएँ प्रबन्ध काव्य न होकर मुक्तक ही है।

इसके अलावा बहुत सा स्फुट काव्य छंद विशेष के संग्रहो के रुप में संचित है। जिन छंदो में राजस्थान के मुक्तक काव्य का वैभव निहित है, वे हैं दोहा, सोरठा और कुंडलिया दोहा छंद राजस्थानी छंदो में सबसे प्राचीन है। जितना लोक काव्य यहाँ इस छंद में मिलता है उतना अन्य किसी छंद में नहीं। कहने का तात्पर्य है कि दूहा, कुंडलिया, सोरठा, कवित्त, नीसाणी, झूलणा, झमाल, गीत आदि छंदो के नाम से अनेक स्फुट काव्य संग्रह तैयार हुए। ये स्फुट रचनाएँ यहाँ के महापुरुषों और ऐतिहासिक घटनाओं के सरसलघु चित्र हैं। राजस्थान का संत साहित्य भी स्फुट काव्य का भाग है। इन्होंने अपने सिलोक और साखियों में तो दोहा-छंद का प्रयोग किया है, किंतु भक्ति के प्रसाद से मिली हुई पद परंपरा को भी इन्होंने आगे बढाया।

राजस्थानी व्याकरण बहुत विशद है। इसकी सबसे बडी विशेषता छंदो की विविधता है। यहाँ कई प्रकार के वर्णिक एवं मात्रिक छंदो का प्रचलन है जिनके पृथक्-पृथक् गठन के नियम है। छंदो के कई भेद उपभेद बतलाए गए है। विशेष रुप से एक छंद 'गीत' के कुल १०४ भेद हैं। इन गीतों का विशेष लय के साथ पाठ होता है। गीतों की विविधता राजस्थानी व्याकरण की अपनी एक खास विशेषता है।

वैसे तो संस्कृत में अलंकारों को ही काव्य चमत्कार हेतु प्रयोग किया गया है लेकिन वेण सगाई अलंकार राजस्थानी व्याकरण की अपनी निजी संपत्ति है। यह शब्दालंकार है। वर्णो के परस्पर संबंध स्थापित होने से तथा उससे काव्य दोष की निवृत्ति होने से इसे वैणसगाई का नाम दिया गया है। जिस प्रकार राजस्थानी संस्कृति में जब दो परिवारों में बैर पड जाता है और उस बैर को मिटाने के लिए उन परिवारों में सगाई का दस्तूर कर दिया जाता था, ठीक उसी प्रकार वैण सगाई के प्रयोग से काव्य दोष से मुक्ति मिल जाती है-

इस संबंध में एक दोहा प्रचलित रहा है

वैण सगाई वाळियाँ, पेखीजै रस पोस।
वीर हुतासण बोल में, दीसै हेक न दोस॥

1. लोक सस्कृति, जुलाई 71, पृ. 32 (राजस्थानी लोकसाहित्य का सैद्धातिक विवेचन : डॉ. सोहनदान चारण, पृ. 124)

शब्दकोश - भाषा शब्दों के माध्यम से प्रकट होती है।

यदि शब्दों का विशाल भंडार न हो तो वह भाषा समृद्ध भाषा का दावा प्रस्तुत नहीं कर सकती। शब्दों को विविधता से भाषिक सौंदयवृद्धि होती है। इस दृष्टि से राजस्थानी भाषा का शब्दभंडार विशाल, समृद्धशाली तथा वैविध्यपूर्ण है। लोकगीतों में भी विविध शब्दावली का प्रयोग हुआ है। यहाँ राजस्थानी शब्दावली की यह विशेषता है कि यहाँ के शब्दों की चार स्थिति पायी जाती है। शब्दों की विविधता विशेष रुप से दृष्टव्य है - जैसे खाना खाने के आग्रह संबंधी अलग अलग व्यक्ति से कहना - रोटी गिट ले, रोटी खा ले, भोजन जीमलो, तासली अरोगलो। ऊँट के लिए २५० पर्यायवाची, इसी प्रकार घोड़े, तलवार इत्यादि के भी बहुत पर्यायवाची गिनाए जाते हैं। शब्दों की यह विविधता, विशालता राजस्थानी भाषा को समृद्ध एवं वैभवपूर्ण बनाने में प्रमुख रुप से सहयोगी रही है।

लिपि के संबंध में कहे तो प्रारंभ में राजस्थानी की अपनी स्वयं की लिपि थी जिसे महाजनी, बणियावटी का नाम दिया गया इसमें अक्षरों को मोड़कर लिखा जाता है अतः इसे मुड़िया लिपि का भी नाम दिया। राजस्थानी से अभिप्राय मुड़िया लिपि से ही है।

(i) वर्ण परिवर्तन : चाहे वे वर्ण स्वर हो या व्यंजन परिवर्तित रुप में एक ही शब्द में एक की बजाय दूसरे का प्रयोग हो जाता है कुछ वर्ण परिवर्तित रुप में इस प्रकार प्रयुक्त होते हैं-

स के स्थान पर ह
च............स/ह/छ
ब.. ....व
व.............ब
ज............य
ऐ.............हे
ए.............ओ

(ii) ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग - राजस्थानी डिंगल में सामान्य जो कठोर या दीर्घ वर्ण माने गये हैं उनका प्रयोग सहज रुप से हुआ है। इन वर्णो के प्रयोग से भाषा में ध्वन्यात्मकता आ जाती है। लोकगीतों में उन वर्णो के प्रयोग एवं उनके उच्चारण के समय वे शब्दध्वनि के रुप में गूंजते है। ये वर्ण मृदु भाषाओं के लिए वर्जित है। जो इस प्रकार है - ट, ठ, ड, ढ, ण, ञ, ळ आदि।

(iii) ळ वर्ण एवं ण का विशेष प्रयोग राजस्थानी लोकगीतो व भाषा में मिलता है जो कि इसकी अपनी विशेषता है। दा. काळिंगडौ, सावन-सावण

(iv) स्वर - व्यंजन लोप - भी राजस्थानी लोकगीतों में कई जगह पर द्रष्टिगोचर होता है।

उदाहरणत : श्मशान - मकाण, स्तम्भ - थंभ
अकाळ - काळ, कार्त्तिक - काति, आग-अग
राजपूत - रजपूत, लंका - लंक, माळा- माळ। ऐसे अनेको शब्द मिलते है।

रेफ के कारण भी राजस्थानी ध्वनि में परिवर्तन होता है। राजस्थानी में रेफ को स्वीकृत नहीं किया गया है। इसके स्थान पर र स्वतंत्र पूर्ण रुप से प्रयुक्त होता है जैसे-

कर्म - करम, धर्म - धरम, दुर्गा - दरगा

(v) दंती स का प्रयोग - राजस्थानी भाषा के लेखन में ष तथा श के स्थान पर दंती स का ही प्रयोग होता

है - जैसे भाषा - भासा, प्रकाश - प्रकास, देश-देस श्याम-स्याम, कलश-कलस, शरम-सरम, शिवजी-सिवजी

(vi) ऋ का स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता। जहाँ इसका प्रयोग होता है वहाँ रि अक्षर का ही प्रयोग होगा - ऋषि, रिसि

(vii) न के स्थान पर ण का प्रयोग - प्रायः राजस्थानी लोकगीतों में ऐसा प्रयोग मिलता है। जैसे - जीवन - जीवण, मान - माण, रानी - राणी

(viii) स्वर परिवर्त्तन - राजस्थानी भाषा में शब्दों के पीछे विशेष रुप से उ और इ की मात्राएँ जुड जाती है साथ ही ऐ, ै, की भी प्रयुक्त होती है।

जैसे - आवियउ, जावइ, खैंचइ, कौण, गाडूलौ, रौ, लाइजो, चंपले, न्योतो, नणदोइजी, बेनोई, कठै, थारौ, म्हारे, आदि।

इसी प्रकार इकार तथा उकार के स्थान पर अकार को प्रवृत्ति पाई जाती है - यथा

हाजिर - हाजर, मिनख - मनख, मालूम - मालम, बिराजौ - बराजौ न

(ix) रुपभेद - राजस्थानी भाषा में एक ही शब्द के कई रुप भेद मिलते है जो लोकगीतों में भी दिखाई पडते है-

जैसे भूमि के लिए - भोम, भूमि, भुंहडी, भुंई, भंय, पृथ्वी - प्रथी, प्रथवी, प्रथमी, पोहोवी

- उच्चारण संबंधी विशेषता यह है कि शब्दों के उच्चारण करते समय किसी स्वर या व्यंजन पर विशेष जोर देना पड़ता है अन्यथा अर्थ में भिन्नता आ जाती है। अतः उच्चारण में ध्यान देना आवश्यक है जैसे-

नार-स्त्री, नार-सिंह, कद-उंचाई, कद-कब, पीर-पीडा, पीर-पीहर।

- क्रिया संबंधी विशेषता - राजस्थानी व्याकरण में क्रियाओं के विशेष रुप से प्रयोग के कारण उनके काल का संकेत हो जाता है जैसे

वर्तमान काल - इसे दो रुपों में व्यक्त किया जाता है

(i) मूल क्रिया में इ विभक्ति लगाकर क्रिया को वर्तमान काल के रुप में संकेतित किया जाता है-
जाव - जावै, चराव - चरावै, निभाव - निभावै, राज - लोकगीतों में ऐसे प्रयोग बहुतायत से मिलते है।

(ii) मूल क्रिया के पीछे छै तथा है लगाकर भी - जावै छै, जावै है, आवै छै, आवै है,
उदाहरणतः आज तो बसन्ती गणगोर छो

- भूतकाल - इसमें क्रिया को ओकारान्तक या यो लगाकर किया जा सकता है-

भविष्यत काल - मूल क्रिया के अंत में स्यां, सी, ला, गा के प्रयोग से क्रिया भविष्यकाल में बदल जाती है जैसे - जास्यां, आसी, जावेला, लावेगा, देस्यां

आज्ञार्थक क्रिया में - लिखवै, करावै, लाइजौ, जाइजै इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।
कहज्यो

वचन - राजस्थानी लोकगीतों में एकवचन से बहुवचन रुपान्तरण आकारान्तक के रुप में होता है
(स्वर में अनुनासिकता बढ़ जाती है)
जैसे नर-नरां, रात-रातां,चील-चीलां
खेत-खेतां आदि कर-करां

- कवि - कवियां, मूरती-मूरतियां, दीवाली-दीवाल्यां,

- मा-मावां, लू-लूवां, बहू-बहूवां
- शैली - इस द्रष्टि से राजस्थानी में डिंगल ओर पिंगल दो काव्य शैलियां प्रचलित हैं। मुख्यतः डिंगल का प्रयोग दिखाई पड़ता है क्योंकि इसमें राजस्थानी शब्दों का बहुल्य होता है और वह मुख्य रुप से चारणों द्वारा रचित होने के कारण काव्य की चारण शैली भी कहलाती है।

राजस्थानी में विशिष्ट प्रकार के छंदो व अलंकारो का प्रयोग होता है। अलंकारो में वैणसगाई मुख्य और छंदो में दूहा, झमाळा इत्यादि। दोहे के अनेको रुप व्यक्त हुए हैं।

राजस्थानी लोकगीतों में भाषा की एकरुपता द्रष्टिगत् होती है। इसमें कहावतों व मुहावरों के प्रयोग भी दिखाई पड़ते हैं। यहाँ भाषागत सौंदर्य में हम कहावत व मुहावरे विस्तृत रुप से नहीं देखेंगे चूंकी इसे पूर्व के अध्याय (राजस्थान का प्रकीर्ण साहित्य) में देख चुके हैं।

इस प्रकार अंत में कहना चाहूंगी कि राजस्थानी के प्रबन्धों और मुक्तकों में भी भूमि, नगरों, ऋतुओं, कलाओं, व्यवहारों, उत्सवों, विलासों, नर-नारी के रुपों और भावों का गहन परिज्ञान संचित है। वीरकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल की सारी परंपराएँ इस साहित्य में मिलती है। रस, छंद, अलंकार, शैली आदि सब साहित्यिक क्षैत्रों में राजस्थान के लोकसाहित्य का वैभव अग्रगण्य है यही दोहे और गीत, फाग और बारहमासे, बात और वचनिका राजस्थान साहित्य के गौरव की जय दुंदुभियां हैं।

गुजराती लोकगीतों का भाषागत सौंदर्य

लोगों ने इन गीतों को रचा इसलिए इसमें आडंबरयुक्त वाणी या टेढ़ी मेढ़ी निरर्थक बातों को ध्यान में न लेकर जो कहना है उसीं को ध्यान में रखकर अत्यंत संक्षिप्त व योग्य शब्दों में संपूर्ण भाव या चित्र का तादृश्य उपस्थित करने का प्रयत्न करते है। गुरु द्रोणाचार्य ने जब परीक्षा ली तब पेड़, पत्ते, आकाश, धरती सर्व देखने वाले को अयोग्य मानकर मात्र पक्षी को केन्द्र में रखनेवाला ऊपर से सिर्फ ऑख को देखनेवाले अर्जुन को बाण छोड़ने की अनुमति देते है, उसी तरह लोकगीतकार अर्जुन की तरह तय किए हुए निशान पर ही तीर छोडता है। उसे व्यर्थ की बातों में रस नहीं। लोकगीत चूंकी लोगों के लिए है, अतः लोग समझ सके ऐसे सरल शब्दों में, तदुपरांत उनका जीया जानेवाला स्वयं के जीवन प्रसंगो व घटनाओं द्वारा उसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है इसी कारणवश ये लोकगीत सचोट व असरकर्ता बनते है।

लोकगीत चूंकी कंठस्थ साहित्य के रुप में पीढीदर पीढी चला आया है जो श्रुति स्वरुप में अभी भी लोगों के कंठो में जतन किया हुआ है अतः उसे योग्य स्वरुप में संजोए रखने के लिए खास प्रयत्न न करना पडे और सहज रुप से याद रह जाए इसलिए लोकगीतकार ने उसे सरल व संक्षिप्त शब्दों को व्यक्त करना यथोचित माना है। थोड़े शब्दों में एकाद दुहे या मुक्तक में ज्यादा से ज्यादा प्रबल चित्र सर्जन करने की कोशिश करता है। गागर में सागर भरने की कला इस लोकसाहित्यकार को सहज रुप से हस्तगत हो गई है। दुहा दसवाँ वेद कहकर वह दुहे की अर्थगंभीरता और नाजुक स्वरुप को प्रकट करता है। कंठस्थ परंतु अर्थपूर्ण होने से यह अमूल्य धन है।

लोकगीत मूलतः लोकबोली में ही रचित है। लोकगीतकार अपने हृदय में उछलने वाली भावनाओं को वाचा प्रदान करने में किसी प्रकार की शर्म का अनुभव नहीं करता। उसके शब्द स्वयं स्फूरित होते है जो उसके लाघव की शक्ति है। उसकी स्वाभाविक अल्पभाषिता के कारण थोड़े में ज्यादा समझा देता है। और

इसी से कहावतों व लोकोक्तियों का उद्भव हुआ। कितने शब्दस्य का रुढ़ अर्थ बन जाने से प्रयोग भी होता था। दुहा व मुक्तक इसी लाघव के कारण चोटदार व हृदयस्पर्शी बने है। लोकगीतकार श्री मेघाणी जी ने भी दुहे के विषय में कहा है कि दुहा के स्वरुप पारदर्शी मोती जैसा है जो अपने लाधव के कारण किसी भी काव्यरचना को मात कर सकने की क्षमता रखता है।

लोकगीत की लोकबोली (तळपदी) भाषा की शक्ति उसे सबल बनाती है। जिसमें एक प्रकार की शक्ति है। भाषा को जाने बगैर उसके अर्थ व भाव को पकड़ा नहीं जा सकता। सौराष्ट्र में एक शब्द है - हाकला खुद के स्वजन परिजन के कुशल क्षेम पूछने के लिए कां हाकला छे ने अर्थात् क्यों, कैसे हो। मजे में। उसी प्रकार दुःखद के लिए गोझारां (भयानक) शब्द का इस्तेमाल होता है। बच्चे को बडा करने की कितनी तीव्र गति, फिर भी अत्यंत सरल शब्दो में व्यक्त हुआ है-

कुंवर तो राते नो वधे अेटलो दीअे वधे
ने दीअे नो वधे अेटलो राते वधे छे

अर्थात् कुमार रात को जितना नहीं बढ़ता उतना दिन में बढ़ता है और दिन में जितना नहीं बढ़ता उतना रात में बढता है। भाषाकीय सरलता लाघव दोनों को ही बनाए रखा है। छोटे से वाक्य में लोकसाहित्यकार ने कितनी चित्रात्मकता उपस्थित की है साथ साथ सौंदर्य वर्णन की लहरें हृदय को तरबतर कर देती है-

हाले तो कंकुना पगलां पडे,
ने बो ले तो फूल झरे

अर्थात् नवयौवना जब चलती है तो कुंकुंम चरण पड़ते है और बोलती है तो मुख से फूल झड़ते है।

बत्तीस प्रकार के व्यंजन (पकवान) व तैंतीस प्रकार को साग या दोम दोम साह्यबी में उत्तम कोटि का वर्णन मिलता है। बत्रीस कोठे दीवा थाये (खाने के बाद परम संतोष की भावना व्यक्त हुई है।)

बेटी जब ससुराल जाती है तब गाया जाता है-
दाजीराज नो दीवडो हाल्यो सासरे - इस पंक्ति द्वारा भावनामय सृष्टि उत्पन्न की जाती है।

उसी तरह - तमे पाणी ने अमे पाळ्य (आप पानी और दम हम किनारा) पंक्ति में पति पत्नी के ऐक्य का सूचन करता है।

इसी तरह समयावधि लंबी दर्शाने हेतु-
बार बार वरसनां वहाणां यांद करता है और लंबा वियोग दर्शाया जाता है।

भडली वाक्यों में खेती का संपूर्ण विज्ञान औन नक्षत्रों तथा ग्रहों की असर (प्रभाव) से वर्षा और खेती पर होनेवाली असर का संपूर्ण विज्ञान दुहा रुप में भडली ने बैठाया है और लोकसाहित्यकार ने अपने कंठ में संजोया है। ऐसे अनेको उदाहरण हमें मिलते हैं।

गुजरात के लोकगीतों का प्राण राग सारंग है। किसी भी प्रदेश में, आदिवासियों में या फिर संतवाणी में, विवाह गीत या रास गरबा सभी जगह सारंग का साम्राज्य है। साथ ही देश, भूपाली, कल्याण, केदार तथा शिवरंजनी भी दिखाई पड़ेंगे।

किसी भी एक ही स्वर का शुद्ध व कोमल दोनो स्वरुप प्रकट करना लोकगीत की लाक्षणिकता है। प्रारंभ से चढते (ऊंचाई) स्वर जो शुद्ध हो, अवरोह में वह कोमल बनता है। लोकगीतों को परंपरा से चला

आया लय व तालबद्धता सहज रुप से प्राप्य है। वह नृत्य के साथ गाने की क्रिया है। गुजरात के लोकगीतो को ताल का राजा कहा जाता है साथ ही हींच, हमची, खांयणां और दादरा में भी उतना ही कुशल। गरबे-रास में तो एक खाली और तीन भरी का संसिद्ध त्रिताल होता है।

नाणावटी रे साजन बेठुं जैसे विवाह गीत में स्त्रियां सहज व अनायास बनाए रखती है। अनेक अक्षर एक ही मात्रा में बँटते या खींचते है और एकमात्र में एक दो या तीन अक्षरभी आते है सिलसिला आगे बढ़कर नवीन लय उत्पन्न करता है।

लोकगीत के अनेक मुखडे में ऐसा दिखाई पडता है। कभी बीच में मौन की मात्रा भी आती है, अवगुरु भी आता है। लोकगीतों की परंपरा ने लय की वैविध्यता सिद्ध कर दी है। आरंभ का मुखड़ा लोकगीत का प्राण है। जो सुनते ही लोकगीत का मुख उसकी आत्मा तक ले जाता है। सुनने व शब्द में मर्मस्पर्शी होता है। इन गीतों में हां, हे के मार, हो राज रे, अेमां रे, लोल, वणझारा, मणियारा, रसिया, छेलछोगाळा जैसे शब्दो का प्रयोग लोकगीतों में माधुर्य भर देता है। उसमें यत्न बिना का कलाविधान है। लोकगीतों में शब्द, स्वर और गति लय का समन्वय होता है। इनमें रचनायुक्त परंतु आंतरिक लयवाली होती है।

लोकगीत चूँकि लोक द्वारा लोकबोली सृजित होता है अतः उसकी भाषा में प्रादेशिकता का रंग दिखाई आता है। इनमें स्वर, शब्द, गति और ताल का समन्वय होता है। सर्व जनसमुदाय के कंठ के अनुकूल ही इन गीतों की सरल पद रचना होती है। इनकी भाषा में अलंकारिता का अभाव होता है। साथ ही इनमें लाघव, सरलता, गेयता, स्वाभाविकता तथा प्राकृतिक तादात्म्य भी रहता है। सौराष्ट्र के लोकगीतों का विपुल भंडार है जिसकी तुलना में शायद ही कोई आ सके जो आज पर्यन्त उसी रुप में मिलता है। जिसमें श्रृंगार, वीर, करुण, हास्य, अद्‌भुत, शांत, वात्सल्य तथा भक्तिरस की धाराएँ एक दूसरे में मिलकर जीवन रस की निष्पत्ति होती है। यहाँ के लोकगीत पद दुहो में विशेषरुप से उभरकर आया है। इसमें आए हुए वर्ण प्रत्येक व्यक्ति समझ सके ऐसा सरल है।

इसी प्रकार गुजरात में चरोतर (नड़ियाद, आणंद, पेटलाद, बोरसद प्रदेशों) प्रदेश के लोकगीतों की भाषा में चरोतरी लहजा स्पष्ट रुप से दिखाई पड़ता है। उदाहरणतः नाम, सर्वनाम, विशेषण, क्रियापद में बहुवचन का ओ प्रत्यय निरर्थक लगाने का ढंग इन लोकगीतों में दिखता है - जैसे

जाणे देसाईओनां घरां अेवी तमारी सासरी रे
जनोई पहेरवानी उमरे होंसो घणी रे।

या

घीओनी वाढीओ रे मारा रामणामां।
इसी तरह से ई का चरोतर में अे हो जाता है जैसे
लीली लेंमडीनां लीलां लीलां पान, लँबोरी ले रे छे
सवा मण घऊं लइने वेंणवा बेठी।

इसी प्रकार आ का ओ उच्चारण तथा क का च बनता है जैसे

अल्या, छोरा रे! तु च्यम पीळोपच? ग का ज तथा व लुप्त जैसे
अमे पूनम नावा ज्यांता, अमे पडवे पाछां वळियां स श एवं ष का स्वतंत्र अलग उच्चारण न होकर दंत्य स रुप में ही होता है - जैसे

मारा वाडामां वेणनो छोड, भम्मर जेडवुं पांन्सेरनुं थयुं छे पण वेंणसे कोण?

ऐसी अनेक विविधताएँ भाषाकीय द्रष्टि से इन गीतों में आती है। कुछ शब्द प्रयोग विशिष्ट रुप से देखें जैसे - ताणे, बोन, मेंकुं, जेयणां लोजे, टोल्ले यह सब चरोतरी शब्द प्रयोग लोकगीतों में भावनिरुपण की संक्षिप्तता और सचोटता की सुगंध महका जाते है साथ ही उसका प्रासानुप्रास वर्णसगाई भरी शब्दयोजना गीत की गेयता को पुष्ट करती है।

लोकगीतो के जादू का महत्वपूर्ण स्तंभ है सांदोल लयछटाओं से युक्त उसका गीतगठन अर्थात् उसमें प्रयुक्त लोक लय (ढाळ) या देशीओ (देशज, लोक) अर्थात - देशी संगीत शैली जो पिंगल के छंदानुशासन का कतई अनुकरण नहीं करती। गुजराती लोकगीत छांदस न होकर सांगीतिक है। इसमें पंक्ति के प्रारंभ, अंतराल या अंत में हां,॰रे, हो, जी, के जैसे एकाक्षरी या बोल, राज, होजी जैसे अनेकाक्षरी अर्थरिक्त तान पूरक सांगीतिक लय की मात्रा पूर्ति का कार्य करते है। गीत पूरी तरह से तालयुक्त व लयपूर्ण होता है। प्रमुख मुख्य ध्रुव पद लोकगीत की सौंदर्यव्यंजना में महत्वपूर्ण बल है। चरण के अंत में ध्रुकंडक (मुख्य) के लय को आवर्तित करती रचना प्रत्येक चरण में संपूर्ण रुप से समतल या आरोह / अवरोह का युग्म रुप मिलता है जैसे

मेळो रे उसीलो / सोरी समके थी
समके तो मने केजे रे सोरी समके थी।
इसी तरह बहुसंख्यक लोकगीतों में व्याप्त अंतरेह की चाल उदाहरणतः
ओतरो खंडमां अजोधा गाम छे रे
तिया दशरथ राजानां राज हो,
गरबी गाइअे तो रुडा रामनी रे।

इसी प्रकार प्रारंभिक पंक्ति में संपूर्ण रचना के भावहार्द की सूचना दे कितना मार्मिक, सघन व लाघव, चोटपूर्ण रसस्थानों का निर्माण हुआ है उदाहरणतः

कूवा कांठे ठीकरी, कांई घसी ऊजळी थाय,
मोरबीनी वाणियण मच्छु पाणी भरवा जाय।

गुजराती लोकगीतों में लोकभावों के आलंबन व उद्दीपन रुप में प्राकृतिक पदार्थो की विपुलता मिलती है। पीपल, बड़, आम, नीम आदि वृक्ष तुलसी सभी का सांस्कृतिक संदर्भ प्रकट होता है। नदी, सरोवर वन सभी का उल्लेख इन गीतों में मिलता है इनमें प्रतीकात्मकता, अलंकरण व पार्श्वसज्ञा का कार्य करते है। इससे लोकगीत में काव्य शोभा का स्पर्श मिलता है।

कई रचनाओं में निरुपति शब्दचित्र उसके महीन चित्रांकन के कारण सदैव हृदय में बस जाते हैं उदाहरणतः

झल रे मणियाना झल रे शीवडावो,
झल रे शीवडावो, दोरंगी वेतरावो
केड, मरडीने पे रो रे फलाणा भाई / पेरो रे

लोक रचनाएॅ पूर्णतः काव्य की निरपेक्ष शब्द घटना नहीं होती भावों का सहजोदगार उसके मूल में रहता है। यहाँ लयनिर्मित छटा उत्पन्न होती है। यहाँ अपार वैविध्य मिलता है।

गुजरात के लोकगीत में मुख्य रुप से लय जिसे ढाळ कहा जाता है जो रस निष्पत्ति करता है। लोकगीतों में शब्द और स्वर इकदूजे से ओतप्रोत है। यहाँ कोई कृत्रिम प्रयोग नहीं होता। भाषा का मरोड, उसकी विशिष्ट श्रुति, उसका उच्चारण और नैसर्गिक मिठास सभी को मिलाकर मानो उसकी स्वर रचना हुई है। गुजराती भाषा की असल मिठास का जतन करने में लोकगीतों का महत्वपूर्ण योगदान है। इस गीतों का लय (ढाळ) सीधे सादे श्रमरहित आरोह अवरोह ज्यादातर दादरा, हींच और केरवा तथा दीपचंदी के ताल प्रवाह में होता है। विशेषतः सोरठ, काफी, खमाज, महाड, पीलु, कल्याण, सारंग आदिराग बारंबार दिख पड़ते है। प्रथम पंक्ति का उठाव लोकगीत में हमेशा आकर्षक होती है और फिर संपूर्ण गीत पर एक कवच जड़ देती है। रसावरण ओढ़ती है। इनमें अक्षर मेल की अपेक्षा मात्रा मेल में लय प्रवाह व्यक्त होता है। साथ ही प्रसानुप्रास, आकार उकार, इकार, स्वर अनुनासिक वर्ण इत्यादि इनमें होता है।

गुजरात के लोकगीतों में नरसिंह मेहता और मीरां का अमूल्य योगदान है जिसे कभी भूलाया नहीं जा सकता। यह दोनों लोकजीव्हा व लोककंठ पर बिराजमान रहे गाए जाते रहे और हैं। नरसिंह मेहता के प्रभातिए आज भी गुजरात के गाँव और शहरों के घरों में गूजते है। मीराबाईने हिंदी-मारवाडी में भी पदो की रचना की है। गुजरात में मीरां का सर्वांग सुंदर पद में 'जुनुं तो थयुं रे देवळ जुनुं तो थयुं' है।

गुजरात के लोकगीतों में प्रभातिया (सवेरे गाए जाने वाला गीत) प्रभात राग में गाए जाते है। अधिकतर झूलणां छंद में रचित है। जिनमें सदाचार का बोध है तो कहीं ज्ञान वैराग्य की सूझ है। अखा के छप्पे जो लोक में गाए जाते है इनके जनसमुदाय में प्रवर्तमान धार्मिक व सामाजिक बदियों पर भाषाकीय कुल्हाडी का प्रहार कर प्रजा को जागृत कर उसे उन्नती के मार्ग की ओर मोड़ना वह छप्पा की विशेषता है। इस वाणी में कटुता, तिग्मता और कठोरतापन है।

उसी तरह रास नृत्य प्रकार के साथ काव्यप्रकार भी है जो गुजरात में अति प्रसिद्ध है। रास अर्थात् मानवहृदय की मृदु और ललित संवेदना को पद्य स्वरुप में उत्कट रुप से चित्रित करने वाला भावप्रधान (उर्मि काव्य) काव्य कहते है जो रासक छंद में लिखा जाएं वह रासो।

रासडा भी महत्वपूर्ण लोकसाहित्यिक अंग है। इनमें भी वर्णनात्मक रहती है जिसका विषय ऐतिहासिक होता है। गुजरात में मीरखाँ नामक बहारवटिया (शूरवीर) सोरठ के जोगीदास खुमाण, कादु मकराणी आदि के रासडा प्रचलित है। रासडा लोकगीत को लय में युक्त राग से गाया जाता है। यह गौरवप्रद इतिहास को जीवित रखते है।

उसी प्रकार गरबो, जो स्त्रियां गाती है और गरबी जिसे पुरुष वर्ग गाता है अत्यंत प्रसिद्ध है। नवरात्र में शक्तिपूजा का प्रतीक है। पुरुष अकेले गरबी गातें है उसे हमची और स्त्रियाँ गरबो गाती हैं उसे हींच कहते है। भाषाकीय दृष्टि से गरबो वर्णनात्मक है जबकि गरबी उर्मि काव्य है। गरबो शक्तिपूजा, महिमा का प्रतीक है जबकि गरबी श्रीकृष्ण व राधा की प्रेम क्रीडा तथा भक्ति का निरुपण करता है। सुगेयता इनकी विशष्टता है।

गुजरात में माणभट्ट आख्यानकार के रुप में प्रसिद्ध है। माणभट्ट माण (गागर) पर अंगूठी से लय देकर आख्यान गाते जिसमें स्वर से रमझट बोली जाती। यहाँ श्री, रामग्री, देशाख, केदार, वसंत, सोरठ, भूपाल आदि राग आलापे जाते। आख्यान वर्णानात्मक काव्य है। इसकी विषयवस्तु रामायण महाभारत या भागवत-पुराण जैसे ग्रंथो से ली जाती।

गुजराती संतवाणी-भजनो को देखे तो उसमें अनेक प्रकार से ईश्वर का महिमागान गाया गया है। प्राचीन पद बहुधा पुराने लय विशेषकर सोरठ, देश, माढ, कालिंगडा भैरवी आदि राग में गाए सुने जाते है।

लोकबोली में सृजित होने पर भी धर्म-दर्शन-चिंतन की शास्त्र पुराणों से चली आई परिभाषा रासडा अर्थात् पराक्रमी व्यक्ति की वीरगाथा। रासडा मुख्यरुप से समाज जीवन और कौटुम्बिक जीवन से जुडे है। जनसमाज के कंठ में जिनका करुण इतिहास बसा है ऐसा जसमाओडण का रासड़ा, जेसल तोरल का रासडा, राणकदेवडी का रासडा आज भी जीवंत है। रासडा कथात्मक काव्य है। जो लोगों के हृदय की भावनाओं की झांकी कराता है। यह भाषा के प्रवाह को निरंतर गतिशील रखता है।

गुजराती लोकगीतों में बारहमासा के गीत भी मिलते है। प्राकृतिक प्रभाव के तहद उत्सव, व्रत और आहार विहार करते ना य क नायिका के मनोभावों का वर्णन बारहमासा की मुख्य कथावस्तु होती है। बारहमासा गेय प्रकार होने से इसमें वर्ष के बारह महीनों का औचित्यपूर्ण, लाघवयुक्त और चोटदार वर्णन होता है। बारहमासा में विप्रलंभ श्रृंगार प्रधान होता है जिसमें नायिका के विरह का वर्णन होता है। जो अंततः संयोग में परिवर्तित होता है। इनमें ऋतुओं का गान व रम्यता दिख पडती है। बारहमासा के गीतों से तत्कालीन संस्कृति का दर्शनः उस समय के लोगों के रीतरिवाज रहनसहन, आचार विचार, व्रत, उत्सव, शगुन अपशगुन इत्यादि का ख्याल मिलता है।

इसी तरह गुजरात के प्रसिद्ध गरबा और गरबी। गरबा में देवीपूजा, देवी का स्वरुप और उनके श्रृंगार, वर्णन, कथानक, देवी शक्ति के प्रसंग चमत्कार आदि विस्तारपूर्वक वर्णित होते है। गरबे में गरबा कथन एवं वर्णनप्रधान होता है। इसमें श्रृंगार, करुण, वीर और अदभुत रसों का निरुपण होता है। जबकि गरबी कथन नहीं परंतु भावों की उर्मिमय अभिव्यक्ति होती है। इसमें भावों की सघनता मिलती है। गरबी एक लगातार छोटी और भावना प्रधान रचना है। इसमें संक्षिप्तता होती है। गरबी में एक ही विचार, एक ही उर्मि संक्षिप्तता होती है। गरबी में एक ही विचार, एकही उर्मि अथवा एक ही प्रसंग का आलेखन होता है भाषाकीय द्रष्टि से लंबे वर्णनो को इसमें स्थान नहीं। गरबी का ध्रुवपद (मुख्य पद) आकर्षक व मधुर होता है। संक्षेप में जो थोडे शब्दों या कम से कम शब्दों से जो सचोट भाव जगाए जिसकी रणकार कानों से दूर न हो ऐसी मधुर पदावली गरबी।

इसी प्रकार गुजरात के लोकगीतों में विवाह गीतों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। जिनमें स्त्रियों के सहजोद्‌गारों का निरुपण सरल व सरस शैली में हुआ है।

गुजरात लोकगीत लोकमानस, लोकाचार व लोकमान्यता के दर्पण हैं। कंठोपकंठ और कर्णोपकर्ण सवारी कर ललित, मधुर, तेज व प्रभावकारक स्वाभाविक भावपूर्ण वाणी इनकी विशिष्टता है। इन गीतों के व्यंग्य विनोद, इनके सुबोध व भावनापरायणता तथा उसकी हृदयस्पर्शिता को लेकर सत्व, रसत्व व सुगंध में ये अनोखे लोकगीत है। जो बोलचाल की भाषा में ही जन्म लेते, जीते व आगे बढ़ते, विकसित होते है। इसमें अकृत्रिम सौंदर्य, रससंतर्पक लाघव, वेधक चोट एवं मार्मिकता से परिपूर्ण होते है। लोककल्पना में से स्फूरित अलंकार उसे रोचक बनाते है। वीर, श्रृंगार, करुण, अद्‌भुत, हास्य आदि रस उसे सजीवता और चित्रात्मकता बख्शते हैं।

पारिभाषिक शब्दावली, गूढ रहस्योन्मुखी अकल वाणी जैसे तत्व उसमें विद्यमान रहते है। भजनो संतवाणी की धारा लोककंठ आसानी से ग्रहण कर सके ऐसी सरल लोक शब्दावली में रचा गया है। लोकगीत वर्ग निरक्षर होने के बावजूद उनकी वाणी अनुभव सिद्ध है। गुजरात के यह भजन लिखित व मौखिक दोनों परंपरा में मिलते है। इन भजनों की शैली निराडंबरी शैली है। शब्द और अर्थ दोनों में सरलता, सादगी और सहज स्वाभाविकता है। छोटी संगीतमय आधारभूत (टेक) पंक्तियां, शब्द व संगीत का अद्‌भुत मेल।

विविध धार्मिक अवसरो, भोज अमावस्या, पूर्णिमा पर मंदिर, मठ मेले, उत्सवो में सामूहिक रुप से भजन गाए जाते हैं। रामसागर, मंजीरे और देशी सितार, माण या ढोलक तबलां जैसे वाद्यों का उपयोग होता है।

सुंदर वर्णायोजन, प्रासानुप्रास की प्रासादिकता, शब्दों का समुचित उपयोग, आधार पंक्ति का माधुर्य और आडंबरहीन शैली के कारण भजनों का आंतरिक सौंदर्य तो रमणीय है ही साथ ही उनके अनुकूल लय की योजना, अलग अलग लोकसंगीत की शैली के अनुसार लय का आयोजन, राग रागिनियों का ख्याल विविध ताल-ढंग के प्रयोग जैसा बाह्य सांगीतिक तत्वों का अद्भुत संगम मेल मिलता है। भजनों में विविध भावों का उत्कट संगम मेल मिलता है। भजनों में विविध भावों की उत्कट भाषा शैली व उन भावों को श्रोतागण के चित्त में साकार करने वाला संगीत इन तीनों का समन्वय भजन में देखने को मिलता है।

इस प्रकार गुजरात के लोकगीत उसकी सारी प्रादेशिक लाक्षणिकताओं से भरपूर रसभरा / रसपूर्ण साहित्य है। संपूर्ण जाति-धर्म-संप्रदाय के स्त्री पुरुषों द्वारा संघगान-समूहगान के रुप में अवतरित होने वाला से साहित्य लोकगीत-पद-दुहे के रुप में विशेष खिलकर / उभरकर आया है। इसके वर्णन प्रत्येक जन / व्यक्ति समझ सके ऐसे सरल है। वह चिर सुंदर चिर मधुर है / पुराना सृजन होने के बावजूद नित्य नवीन सौंदर्य प्रकट करता रहा है।

लोकगीतों की रचना तो मानवसमाज के साथ ही हुई है। जब तक स्वयं का साहित्य लिपिबद्ध करने की शक्ति मानव में न थी तब तक केवल मौखिक परंपरा से ही साहित्य का जतन करना पड़ा। लोकगीत को कंठस्थ रखकर संभालना था तब शब्दलाघव की कला महत्वपूर्ण थी। भारत के असंख्य ग्रामों की प्रजा निरक्षर थी तब केवल मौखिक प्रवृत्ति ही उनके साहित्य का माध्यम था।

अतः ग्राम्य प्रजा द्वारा तुरंत याद रह जाए, हृदय में बस जाए ऐसे सीधे सादे सरल परंतु सधा हुआ तीर ठीक निशाने पर बैठे ऐसे वेधक शब्दों की रचना हुई। तभी तो वह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास, एक पीढी से दूजी पीढी के पास सरलता पूर्वक पहुँच सका।

*****